

# प्रशासकीय न्यायाधिकरण की अवधारणा

## स्निग्धा त्रिपाठी

*I kjkk %प्रस्तुत शोध पत्र में "प्रशासकीय न्यायाधिकरण की अवधारणा" का विशद् विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि भारत में भी अन्य देशों की भाँति विभिन्न प्रकार के प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की अतिशय वृद्धि परिलक्षित हो रही है। हालांकि इस न्यायाधिकरण देश ने वास्तविक संवैधानिक तंत्र के एक स्थायी अंग का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। इन्हें अधिनिर्णय (Adjudication) की प्रणाली के रूप में मान्यता प्राप्त हो गयी है जिनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि दृष्टिगत हो रही है। फ्रेडरिक एफ. ब्लैकली और मिरियम ई. ऑटमैन (Frederich F. Blackly and Miriam E. Oatman) का प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को 'प्रशासकीय न्यायालय' के रूप में अभिव्यक्त करते हुए कथन है कि, "न्यायिक प्रणाली के वाह्यतर स्थित ऐसी सत्ता प्रशासकीय न्यायालय कहलाते हैं, जो तत्कालीन समय की विधियों की व्याख्या प्रस्तुत करते हों, उन्हें लागू करते हों जब भी लोक प्रशासन के कार्यों पर औपचारिक मुकदमों अथवा अन्य स्थापित रीतियों द्वारा अतिक्रमण किया जाता है"।<sup>1</sup>*

### प्रस्तावना

वस्तुतः सरकारी कार्यों में अप्रत्याशित अभिवृद्धि होने के कारण कार्यपालिका के हाथों में शक्तियों का अतिशय केन्द्रीकरण परिलक्षित हो रहा है। डब्ल्यू. ए. राब्सन (W.A. Robson) की दृष्टि में, "ब्रिटिश संविधान पिछली अर्द्धशताब्दी के समय जिस विस्मयपूर्ण रूप में विकसित हुआ है उनमें से एक यह है कि राज्य के बड़े विभागों तथा न्यायालयों के बहिर्गत अन्य अनेक निकायों और शक्तियों ने न्यायिक शक्ति प्राप्त कर ली है"।<sup>2</sup> उक्त कथन भारत पर भी पूर्णतः लागू होता है। यद्यपि कल्याणकारी राज्य में बहुत से विषयों के अन्तर्गत विधि-निर्माण करना अत्यन्त अपरिहार्य हो जाता है। फलतः कानूनों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि होना अवश्यम्भावी हो जाता है।

हालांकि एक सामान्य नागरिक के जीवन में कल्याणकारी राज्यान्तर्गत सत्ता का हस्तक्षेप अपेक्षाकृत अधिक होता है। सत्ता एवं व्यक्तियों के बीच विवादों की अधिकता से संविधि अथवा न्यायाधिकरणों के माध्यम से ही इन विवादों का निर्णय करना सम्भव

हो पाता है। अधुनातन समय में व्यक्ति के अधिकार तथा स्वतंत्रता को प्रायः चुनौती दिया जाना एक अत्यन्त भयावह समस्या है। वैयक्तिक अधिकारों एवं जनहित की इच्छाओं के अनुकूल समन्वय में किसी भी प्रकार का प्रयत्न करना शेष नहीं रखना चाहिए। इस तरह के वांछित समझौते को सम्पन्न कराना ही प्रशासकीय न्यायाधिकरणों का प्रमुख उद्देश्य होता है, निःसन्देह ऐसा होना भी चाहिए। प्रशासकीय सत्ता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सामान्य नागरिकों के निकाय को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करे कि लोकहित, जिस हेतु वह कृतसंकल्पित है तथा वैधानिक हित जिसमें वह अवरोध उत्पन्न करता है, इनके मध्य समन्वय एवं संतुलन को यथोचित सम्मान स्थापित करने हेतु सतत् प्रयत्नशील हो।<sup>3</sup> 1957 में इण्डियन लॉ इन्स्टीट्यूट में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के भाषण का सार रूप यही था जिसमें उनका कथन था कि, “जहाँ तक व्यक्ति को स्वतंत्रता पर प्रतिबंधों का प्रश्न है, हमें इस तथ्य पर एकदम अलग तरह से विचार करना चाहिए। जहाँ एक तरफ हमारी यह अनुभूति होती है कि व्यक्ति को अधिकतम स्वतंत्रता की प्राप्ति होनी चाहिए तो वहीं दूसरी तरफ हमें यह भी मानने की आवश्यकता है कि एक कल्याणकारी राज्य में स्वयं एवं दूसरों के साथ व्यवहार करने में व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अधिक से अधिक नियंत्रण स्थापित होता है। एक उत्तम शासन को ऐसे श्रेष्ठ साधन के अन्वेषण की आवश्यकता है जिससे वह इन दोनों के मध्य समन्वय एवं संतुलन स्थापित कर सके, इस हेतु मध्य मार्ग श्रेयष्कर होता है जिसको ढूँढने की अपरिहार्यता होती है”।<sup>4</sup>

यद्यपि कुछ ऐसी शक्तियाँ होती हैं जो प्रशासकीय प्राधिकारों में निहित तो होती हैं किन्तु उनका स्वरूप अपने प्रयोग के ढंग में एक सीमा तक न्यायिक होता है तथा उसी के नियन्त्रणाधीन होता है। हालांकि कोई भी कार्य न्यायिक कार्य तब कहलाता है जब वह कार्य न्यायालय द्वारा सम्पन्न किया जाता है, किन्तु कार्य जब प्रशासकीय न्यायाधिकरण द्वारा सम्पादित किया जाता है, तब वह अर्द्ध-न्यायिक कहा जाता है। किसी भी अर्द्ध-न्यायिक कार्य को किसी न किसी प्रशासकीय निकाय द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है, जो न्यायिक रीतियों का अनुपालन करने तथा तथ्यों के सम्बन्ध में कानून को लागू करने हेतु बाध्य है। न्यायिक एवं अर्द्ध-न्यायिक कार्य में समरूपता इस रूप में परिलक्षित होती है कि किसी भी तथ्य अथवा तथ्यों के समूह के प्रति कानून लागू किया जा सकता है। “न्यायिक अधिकारियों का जहाँ तक सम्बन्ध है उनके आदेश या तो न्यायिक हो सकते हैं अथवा प्रशासकीय। वे अर्द्ध-न्यायिक नहीं हो सकते, क्योंकि अन्य अधिकारी न्यायिक नहीं होते, चाहे उनके आदेश भले ही न्यायिक हो, किन्तु वे मात्र अर्द्ध-न्यायिक ही हो सकते हैं”।<sup>5</sup>

वस्तुतः प्रशासकीय न्यायाधिकरण व्यक्ति तथा सार्वजनिक सत्ता के मध्य यथोचित सम्बन्ध कायम करने की दृष्टि से गतिशील होते हैं। उनके द्वारा नागरिकों की स्वतंत्रता तथा न्याय और अधुनातन सरकार की जरूरतों के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का निरन्तर प्रयत्न किया जाता है। निःसन्देह साधारण विधि के सन्दर्भ में विधि न्यायालयों

के कार्य प्रशंसनीय रहे हैं किन्तु अधुनातन सामाजिक सेवा वाले राज्यों हेतु जो दिन-प्रतिदिन अधिकतम महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। हालांकि यह समय की माँग है कि एक नूतन किस्म का न्याय जिसमें समाज-कल्याण की भावना निहित हो, अत्यन्त अपरिहार्य है। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के उद्भव तथा विकास से ही लोकहित की भावना से युक्त न्याय सम्भव हो सकता है।

यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी में सरकार के कार्यों का प्रसार एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों में होने, समुदाय के सामान्य कल्याण, सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के हित में व्यक्ति के अधिकार उत्तरोत्तर सीमित होने, सेवायोजन की शर्तों पर सामूहिक नियन्त्रण का विकास होने एवं रहने के ढंग और लोगों की प्रारम्भिक आवश्यकताओं के विकास के फलस्वरूप अधिनिर्णयन की एक ऐसी तकनीक की जरूरत उत्पन्न हो जाती है जो कानूनी न्यायालयों की जटिल और महँगी मुकदमेबाजी की तुलना में सामाजिक अपरिहार्यताओं के अधिक अनुकूल हो। डीन रोस्को पाउण्ड (Dean Roscoc Pound) की दृष्टि में, "जब किसी व्यक्ति द्वारा अपने बात की अभिव्यक्ति की जाती है तो तत्कालीन समय में वह अहस्तक्षेप की पद्धति से मिलती-जुलती कम प्रतीत होती है तथा सामाजिक उद्देश्यों हेतु विद्यमान सामाजिक संस्था से अधिक मिलती-जुलती है। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के अस्तित्व अपरिहार्य हो अथवा न हो, किन्तु निःसन्देह प्रशासकीय कानून के पुनर्जीवन के कई कारण हैं। यथा— समाज के विरुद्ध नवीन प्रकार के अपराधों का उद्भव, सामाजिक अधिकारों की एक नूतन अवधारणा का विकास, सामान्य कल्याण की तीव्रतर इच्छा एवं उन्नीसवीं शताब्दी के अतिव्यक्तिवादी अधिकारों की दिव्यता में पूर्ण विश्वास का अभाव इत्यादि"।<sup>6</sup>

अतएव सभी देशों में प्रशासकीय न्यायाधिकरण का शीघ्र ही विकास स्वाभाविक होना सुनिश्चित हुआ है। यह किसी भी विशेष संवैधानिक स्थिति से सम्बद्ध नहीं है। इनका मुख्य कारण सरकार के क्रियाकलापों तथा उत्तरदायित्वों का प्रसार ही है। भारत में विधायी अधिनिर्णय, जो अर्द्धन्यायिक सत्ताओं की रचना करते हैं, वे अधिसंख्य रूप में परिलक्षित हो रहे हैं। हालांकि प्रशासकीय न्यायाधिकरण केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा पारित कानूनों के अधीन कार्यरत हैं। अधुनातन समय में देश की वृहद् स्वरूप एवं जनसंख्या की अधिकता तीव्रतर रूप में विकसित हो रही अर्थव्यवस्था और कल्याणकारी राज्य में निरन्तर बढ़ते हुए प्रशासकीय भूमिका को दृष्टिगत करते हुए न्यायाधिकरणों की संख्या में अभिवृद्धि होने की प्रबलतम् सम्भाव्यता है। प्रशासकीय अधिनिर्णय तीव्रता से न्यायिक क्षेत्र के एक अपरिहार्य अंग का स्वरूप धारण करता जा रहा है। यद्यपि लोक प्रशासन के कुछ विशिष्ट एवं सीमित क्षेत्रों में ही प्रशासकीय न्यायाधिकरण की स्थापना की गयी है। यथा— आयकर (आयकर पुनर्विचार न्यायाधिकरण), रेलवे दर (रेलवे दर न्यायाधिकरण), औद्योगिक श्रम सम्बन्ध (श्रम न्यायालय, औद्योगिक न्यायाधिकरण), राष्ट्रीय न्यायाधिकरण और भृति परिषद् (Wage Boards) तथा चुनाव

विवाद सम्बन्धी आयोग स्थापित किए गए हैं। इनके साथ ही वे तदर्थ (adhoc) उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हेतु भी स्थापित किए गए हैं (यथा— जीवन बीमा निगम तथा के.जी.एफ.के. सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति न्यायाधिकरण)। श्रम तथा निर्वाचन न्यायालयों के समक्ष जो विवाद निर्णय हेतु आते हैं, उनमें लोक सत्ता सन्निहित नहीं होती है। वे प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की ही श्रेणी में आते हैं, क्योंकि उनका सृजन विधायी अधिनियम के अन्तर्गत ही की जाती है और कार्यपालिका उनका प्रयोग लोकहित सम्बन्धी विवादों के निर्णय करने हेतु करती है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य अभिकरण भी हैं, यथा— केन्द्रीय राजस्व मण्डल तथा सीमा शुल्क और आबकारी शुल्क के कलेक्टर जिनके द्वारा न्यायिक कार्य भी सम्पादित किया जाता है। वे इन निकायों में स्थायी लोक सेवा का कार्य करते हैं और प्रशासन तंत्र के एक महत्वपूर्ण अंग होते हैं।

यद्यपि प्रशासकीय न्यायाधिकरण ने प्रत्येक देश के संवैधानिक क्षेत्र में एक स्थायित्व कायम कर लिया है। फ्रैंक समिति की दृष्टि में, "सामाजिक कल्याण के लिए सरकार के क्रियाकलाप एवं उत्तरदायित्व के सतत् प्रसार के कारण ऐसे बहुत से अवसरों की सम्भावना उत्पन्न हो गयी है जिनके फलस्वरूप अधिकारों को लेकर किसी व्यक्ति का संघर्ष प्रशासन, अन्य व्यक्ति अथवा निकाय के साथ शुरू हो जाता है। अतएव युद्धोत्तरकालीन वर्षों में न्यायाधिकरणों के क्रियाकलापों एवं उनके महत्व में अप्रत्याशित अभिवृद्धि परिलक्षित हुई। कतिपय मामलों में नूतन नीतियों अथवा विनियामक विधान (Regulatory Legislation) के परिणामस्वरूप न्यायाधिकरणों का गठन किया गया है।

अब न्यायाधिकरण अन्य मामलों में ऐसे कार्य सम्पादित करते हैं जिन्हें पूर्व में अदालतें क्रियान्वित किया करती थीं। हालांकि गत दशाब्दियों के सामान्य सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों पर दृष्टिपात करने पर हमारा विश्वास पूर्णतः दृढ़ हुआ है कि न्यायाधिकरण अधिनिर्णय की एक पद्धति के रूप में कायम हो गये हैं। फलतः विधायी योजनाओं से उत्पन्न होने वाले मामलों से विशिष्ट न्यायाधिकरणों को निर्दिष्ट करने की प्रवृत्ति घटने की अपेक्षा अभिवृद्धि की ओर उन्मुख होगी।<sup>17</sup>

वस्तुतः प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की अभिवृद्धि उनकी सामान्य लोकप्रियता का ही प्रमाणीकरण है। अतएव उन सामान्य तत्वों का विश्लेषण करना यथोचित होगा जो इस दिशा में विकास हेतु उत्तरदायी हैं। वे तत्व निम्नवत् हैं:—

1. सामान्यतः जिन तत्वों के द्वारा प्रदत्त विधि-निर्माण को जन्म दिया गया है, वास्तव में वे ही तत्व हैं जो प्रशासकीय न्यायाधिकरण को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किए अर्थात् क्रियाकलापों का प्रसार एवं नागरिकों के जीवन में शासन का अधिकतम प्रभाव और हस्तक्षेप का होना।
2. अधुनातन प्रशासन का सम्बन्ध तकनीकी एवं जटिल मामलों से भी होता है। इसका मुख्य कारण समाज का जटिल एवं विविधतापूर्ण स्वरूप का होना है। सामान्यतः अदालतों में ऐसे विशेषज्ञों का अभाव पाया जाता है जो इन मामलों

से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का निर्धारण कर सके। अतएव यह उचित है कि ऐसे मामले विशेष न्यायाधिकरणों को सौंप दिए जाए, जिनमें ऐसे विषय-विशेषज्ञ होते हैं।

3. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को प्राथमिकता प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण कारण वैयक्तिक अधिकारों को लोकहित के अधीन करने की प्रवृत्ति भी है। सामाजिक न्याय तथा कल्याणकारी राज्य के अन्तर्गत विशुद्ध कानूनी मार्ग से बचने की आकांक्षा स्पष्टतः परिलक्षित होती है, क्योंकि यह मार्ग अथवा उपागम (Approach) सामान्यतः समकालीन आवश्यकताओं एवं महत्वाकांक्षाओं में बेमेल होता है।
4. सामान्यतः ऐसे मामलों में न्यायाधिकरणों की दृष्टि सामान्य विधि की व्यक्तिवादी परम्परावादी दृष्टि से परिलक्षित होती है। जो स्वतंत्रता की उस अवधारणा के प्रतिकूल होते हुए भी अधुनातन कल्याणकारी राज्य में मान्य है। आर.एम. जैक्सन (R.M. Jackson) की दृष्टि में, "सामाजिक विधान के प्रभाव को दो व्यक्तियों के मध्य का मामला नहीं समझा जा सकता है, किन्तु परम्परागत विधि प्रणाली का केन्द्रस्थ स्वरूप ही एकाकी मामला है"।<sup>8</sup>
5. प्रायः प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को शीघ्रतम् कार्यवाही की आवश्यकता वाले स्थान पर प्रधानता दी जाती है। बेरोजगारी, कोयले की खानों, रक्षा के साधन आदि ऐसे मामले हैं जिनमें शीघ्रता से कार्य सम्पादित करना अपरिहार्य होता है। अतः इन मामलों में विधि न्यायालयों की अपेक्षा प्रशासकीय न्यायाधिकरणों द्वारा अधिक श्रेष्ठतम् रूप से निर्णय किए जा सकते हैं।
6. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की अभिवृद्धि में न्याय प्राप्त करने में कम व्यय, त्वरित न्याय प्राप्ति एवं प्रक्रिया और साक्ष्य सम्बन्धी जटिलताओं से मुक्ति आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कम साधन सम्पन्न मनुष्य साधारण विधि न्यायालयों की खर्चीली एवं विलम्बकारी प्रक्रियाओं का असहनीय भार सहन करने में सक्षम नहीं हो पाता है।
7. प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की शीघ्रतापूर्वक कार्यवाही करने से सामान्य विधि न्यायालयों के कार्यभार में कमी हुई है।

यद्यपि प्रशासकीय न्यायाधिकरणों से ऐसे अनेक लाभ होते हैं जो साधारण विधि न्यायालयों से प्राप्त होना सम्भव नहीं है। फ्रेंक्स समिति के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए बर्नार्ड श्वार्ट्ज (Bernard Schwartz) का कथन है कि, "कुछ लोगों द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि जिन कारणों से न्यायालयों की अपेक्षा विविध प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के हाथों में अधिनिर्णय के प्राधिकार सुपुर्द किए गए थे, वे कारण अधुनातन समय में विद्यमान नहीं हैं तो अब यही श्रेयष्कर है कि अब तक कायम रहे इन न्यायाधिकरणों को समाप्त कर देना चाहिए और उनके अधिकार क्षेत्र पुनः

उपयुक्त न्यायालयों को हस्तान्तरित कर देना चाहिए, किन्तु यह समाधान भ्रमवश सरल भले ही प्रतीत हो रहा हो, लेकिन राजनीतिक अथवा व्यवहारिक रूप से पूर्णतः व्यावहारिक नहीं है। यदि किसी भी प्रकार से ऐसा किया जाना सम्भव भी हुआ तो यह कदापि वांछनीय नहीं होगा कि घड़ी की सूई पुनः उस स्थिति तक पीछे लौटा दी जाय, जहाँ आधुनिक प्रशासकीय न्यायाधिकरण उद्भव से पूर्व थी। यह मार्ग इस तथ्य के अवेहलना करता हुआ प्रतीत होगा कि प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के विकास से आंग्ल-अमेरिकी विधि प्रणाली को निःसन्देह लाभ-हानि हुई है। अतएव अधुनातन समय में मुख्य समस्या यह है कि इनके दोषों का पूर्णतः परित्याग करते हुए इनके लाभों को बनाए रखा जाए। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की विधिवत् पूर्णतः समाप्ति से इन दोनों पक्षों का ही अन्त होना सुनिश्चित होगा।<sup>9</sup> हालांकि प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के मुख्य गुण सस्तापन, गम्यता, तकनीक से मुक्ति, शीघ्रता एवं विशेष विषयों का विशिष्ट ज्ञान है। डब्ल्यू.ए. राब्सन (W.A. Robson) की दृष्टि में, “प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के लाभ हैं— कम व्यय तथा उनके कार्य की गतिजता, तकनीकी ज्ञान तथा अनुभव जिसे वे विशिष्ट क्षेत्रों के न्यायिक कार्यों के संचालन में उपलब्ध करते हैं। लोकप्रशासन के कुशल संचालन में उनके द्वारा प्रदत्त सहायता तथा नूतन स्तर निर्धारित करने तथा सामाजिक सुधार की किसी नीति के उद्भव सम्बन्धी योग्यता”<sup>10</sup>

वस्तुतः इन लाभों के होते हुए भी प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की तीव्र आलोचना भी की जाती है। लार्ड हेवार्ट ने तो इन प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को ‘संगठित अराजकता’ तक कह डाला है। “दि टाइम्स ऑफ इण्डिया” ने अपने सम्पादकीय लेख में लिखा था कि, “हमारे विचार कुछ भी हो, प्रशासकीय विधि, अपने ऊपर आश्रित प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के साथ फौजी कानून (Martial Law) की भाँति प्रतीत होता है जो वास्तव में कानून से मनाही ही है।”<sup>11</sup> के.एम. मुंशी का कथन है कि, “किसी अधुनातन कल्याणकारी राज्य में प्रशासकीय अधिकरणों के अनिवार्य हो जाने पर भी यह समस्या परिलक्षित हो रही है कि एक प्रजातांत्रिक राज्य में ‘न्यायाधिकरणों द्वारा दिए गए न्याय का किस प्रकार निष्पक्षता, निश्चितता तथा दृढ़ता के साथ सम्पादन किया जाए’”<sup>12</sup>

इस प्रकार प्रशासकीय न्यायाधिकरणों पर अनेक कटाक्ष किए गए हैं। निःसन्देह इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्रशासकीय न्यायाधिकरण पूर्णतः दोषमुक्त है। तथापि प्रदत्त विधि निर्माण की भाँति यह अधुनातन जटिल समाज हेतु अपरिहार्य है। इसे समाप्त करने की अपेक्षा इसमें सुधार की ओर दृष्टि डालनी चाहिए। इसका आश्रय भी कभी-कभी ही लिया जाना चाहिए। यह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को न्याय के आवश्यक तत्वों से दूर न हटते हुए इसे निष्पक्ष, निश्चित एवं वाच्य अथवा प्रतिपाद्य (Predicatable) बनाया जाए। भारत में प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की स्थापना का आशय यह कदापि नहीं है कि यहाँ विधि के शासन का परित्याग है। वस्तुतः भारतीय संविधान का अनुच्छेद 32 एवं 226 विधि के रक्षा-स्तम्भ के रूप में विद्यमान है। इतना होने के बावजूद भी प्रायः प्रशासकीय

न्यायाधिकरण संशय की दृष्टि से देखे जाते हैं। इनकी व्यापक सफलता के विरुद्ध दो तर्क प्रचलित हैं। प्रथम, प्रायः उनमें ऐसे व्यक्ति नहीं होते हैं, जिन्हें प्रशासकीय कार्यवाही की उचित समीक्षा के लिए आवश्यक न्यायिक प्रशिक्षण तथा अनुभव प्राप्त हुआ हो, और द्वितीय, न्यायाधिकरण के अधिकारों का दृष्टिकोण न्यायिक पदाधिकारियों जैसे निष्पक्ष एवं अलगाव युक्त नहीं होता है। अतएव इनमें अपेक्षाकृत न्यायिक तत्वों को शामिल करने की स्पष्ट आवश्यकता है। भूतपूर्व न्यायाधीश एस.आर. दास का कथन है कि, “हमें न्यायाधिकरणों का विचार घृणास्पद प्रतीत होता है क्योंकि हम सार्वजनिक कानूनों की आंग्ल-सेक्शन परम्परा में पुष्पित एवं पल्लवित हुए हैं और विधि के शासन की बुनियाद पर हमारा पोषण हुआ है। किन्तु हमें अधुनातन समय की आवश्यकताओं के साथ अनुकूलता बनाकर साथ-साथ चलता है”। हालांकि अधुनातन समय में प्रशासकीय न्यायाधिकरण ने अनिवार्य स्वरूप धारण कर लिया है। अतः जैसा कि बर्नार्ड श्वार्ट्ज (Bernard Schortartz) का कथन है कि, “उनको स्वतंत्र रखना चाहिए और उनकी प्रक्रियाओं पर न्यायिक अभिरक्षणों (Judicial Safeguards) का नियंत्रण होना चाहिए, जिससे वे अन्ततः सच्चे न्यायिक न्यायाधिकरणों का रूप धारण कर सकें”। न्यायाधिकरणों में न्याय का पुट पंखुरित होना परमावश्यक है।

### संदर्भ

1. Frederich F. Blachly and Miriam E. Qatman : Their Joient contribution in the Encyclopedia of Social Science, Vol. III, New Yark, Macmillan, 1954, p.529.
2. W.A. Robson : Justice and Administrative Law, London, Stevens & Sons, 1951, p.11
3. Sir Oliver Franks (Chairman) : Report of the Committee on Administative Tribunals and Enquiries, H.M.S.O., London, 1957, p.5.
4. The President's Inaugural Speech at the Indian Law Institute, The Hindustan Times, December, 13, 1957, p.12
5. Basan Singh Vs. Janak Singh, A.I.R. 1954, All, 477-78
6. W.A. Robson : op cit, pp.33-34
7. Report of the Committee on Administrative Tribunals and Enquiries, p.8
8. R.M. Jackson : The Machinery of Justice in England, Cambridge, Cambridge University Press, 1953, p.235
9. Miniutes of Evidence, Taken before the Committee on Adminisatative Tribunals and Enquiries, London, H.M.S.O., 1956, p.1029.
10. W.A. Robson : op cit, p.573
11. The Times of India, Bombay, Dec. 20, 1957
12. The Hindustan Times, Dec. 15, 1957, p.12